International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(4): 272-273

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(4): 272-273
© 2017
www.anantaajournal.com
Received: 15-05-2017
Accepted: 16-06-2017

डॉ. कृष्णमोहन पाण्डेय
असिस्टेण्ट प्रोफेसर, स.,ध.,आ.,सं.,म., डोहगी, उफना, (हि.प्र.), भारत

Correspondence
डॉ. कृष्णमोहन पाण्डेय
असिस्टेण्ट प्रोफेसर, स.,ध.,आ.,सं.,म., डोहगी, उफना, (हि.प्र.), भारत

मन्त्रार्थावबोधन में यास्कीय शैली

डॉ. कृष्णमोहन पाण्डेय

प्रस्तावना

निर्वचन शास्त्र के आदिम बोधक आचार्य यास्क दुर्बोध मन्त्रों के रहस्यों को सुलझाने वाले अप्रतिम वैदिक हैं। यास्क का मूल्यांकन आधुनिक धरातल पर असम्भव है। मन्त्रों के आविर्भाव पर उनका स्पष्ट मत है कि मन्त्र ऋषियों द्वारा दृष्ट है– साक्षात्कृतधर्माणः ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मेभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदांगानि च। [1] आरम्भिक काल में ऋषियों ने श्रुति परम्परा से वेदों का अध्ययन – अध्यापन सुचारु रूप से गतिमान रखा। कालान्तर में बुद्धि वैलक्षण्य की अल्पता के कारण मन्त्रों के गुह्यज्ञान दुरुह होते गये और परम्परा लुप्त होने लगी। वेदों की रक्षा और अवबोधन के लिए अन्य शास्त्रों की रचना आरम्भ हो गयी। वेदांग उनमें सर्वाधिक प्रभावशाली हैं। वेदांगों में निरुक्त निर्वचनशास्त्र है। वैदिक दुर्बोध शब्दों का निर्वचन कर अर्थ स्पष्ट करना इसका परम प्रयोजन है। यास्क ने यद्यपि यह स्पष्ट कह दिया है कि उनका निरुक्त आदिम वेदांग नहीं है, तथा निरुक्त भी निर्वचन शास्त्र का आदिम ग्रन्थ नहीं है। तथापि उपयोगिता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यद्यपि निर्वचन के आदिम संकेत ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलते हैं, तथापि ब्राह्मण ग्रन्थ सम्पूर्ण प्रक्रिया में अधूरे परिलक्षित होते हैं। मन्त्रों के परिवेश ज्ञान के लिए ब्राह्मण ग्रन्थकारों ने जिस प्रकार विनियोग तथा हेतु कथन पद्धति विकसित की वैसे ही मन्त्रागत शब्दों के अर्थावबोधन के लिए निर्वचन प्रक्रिया भी आरम्भ की। निर्वचन विधि का अंग न होकर अर्थवाद का अंग था, क्योंकि ब्राह्मण ग्रन्थकारों की अपनी सूझ–बूझ और कल्पनायें निर्वचन का आधार थी। यज्ञ संस्था के विकास के साथ साथ अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग भी प्रचलित हुआ जिनका अर्थ बताना आवश्यक था, क्योंकि लोगों को उन पारिभाषिक शब्दों की जानकारी नहीं थी। शब्दों के निर्वचन में उनकी दृष्टि याज्ञिक परिवेश से अधिक प्रभावित थी। ब्राह्मण ग्रन्थों में जितने भी निर्वचन मिलते हैं। उनके परीक्षण से इस तथ्य की पुष्टि होती है। यथा – देवीरापो अग्रेगुवो अग्रेपुवो [2]। इस मन्त्र में अग्रेगुवः तथा अग्रेपुवः के निर्वचन में शतपथ कहता है, कि अग्रेगुव इति ताः (आपः) यत्समुद्रं गच्छन्ति तेनोग्रेगुवः। अग्रेपुव इति ताः (आपः) यत्प्रथमाः सोमस्य राज्ञो भक्षयन्ति तेनाग्रेपुवः [3]। यहां अग्रेगुवः पद अग्र + गम् गतौ धतु से निष्पन्न है। जल समुद्र की ओर सर्वप्रथम जाता है इसलिए उसे अग्रेगुव कहते हैं। इसी प्रकार अग्रेपुव पद अग्र + पू भक्षणे धतु से निष्पन्न होता है। जलों को अग्रेपुवः इसलिए कहते हैं कि ये ही राजा सोम का सर्वप्रथम भक्षण करते हैं। पाणिनि के अनुसार पू पवने के अर्थ में है भक्षण के अर्थ में नहीं किन्तु शतपथब्राह्मण में यह धतु भक्षण अर्थ में प्रयुक्त है। इसी प्रकार बहुत सी धातुएं हैं जो धतुपाठ में प्रयुक्त अर्थ से भिन्न अर्थों में ब्राह्मणों में प्रयुक्त है। इन धातुओं के अध्ययन से ब्राह्मणों के भाषाविषयक अध्ययन पर प्रकाश पड़ता है चूंकि ये धत्वर्थ धतुपाठ में प्रयुक्त धत्वर्थ से प्राचीन है इसलिए वेदमन्त्रों के अर्थ निश्चय में इन धत्वर्थों की अधिक उपादेयता है। ब्राह्मणों में एक ही पद के कभी कभी अनेक निर्वचन मिलते हैं ऐसा आचार्यों की पदार्थ विषयक विभिन्न दृष्टियों के कारण है और कभी कभी पदों के प्रयोगगत वैविध्य के कारण है। ब्राह्मणों में प्रयुक्त निर्वचनों से यह ज्ञात होता है कि निर्वचन के सभी सिद्धान्तों के अनुकूल ही निर्वचन किया गया है। जिनके आधार कर्म, प्रत्यक्षदर्शन, प्रचलित प्रथा एवं विश्वास, आध्यात्म आधिदेव, प्रतीक कल्पना वर्णसाम्य आदि हैं। ब्राह्मणों के दिये गये निर्वचनों के आधार पर उत्तर काल के सभी भाष्यकारों ने अपने अपने अनुसार वेदों पर विस्तृत भाष्य लिखा है।

महर्षि यास्क वेदार्थ ज्ञान के प्रति सर्वाधिक सचेत अध्येता दिखते हैं। वेदों में भिन्नार्थक शब्दों के योग से यदि मिश्रित अर्थ की अभिव्यक्ति होती है तो गुण धर्म के आधार पर एक ही शब्द विभिन्न सन्दर्भों में विभिन्न अर्थों का द्योतन करता है। यास्क ने निरुक्त के पंचम अध्याय में वराह पद के निर्वचन से इस प्रक्रिया का बोध करवाया है, यथा – वराहो मेघो भवति वराहारः। [4] मेघ उत्तम या अभीष्ट आहार देने वाला होता है इसलिए इसका नाम वराह है। अयमपीतरो वराह एतस्मादेव।

वृहति मूलानि। वरं वरं मूलं बृहतीति वा। वराहमिन्द्र एमुषम्।[5] उत्तम उत्तम फल, मूल आदि आहार प्रदान करने वाला होने के कारण पर्वत को भी वराह कहते हैं। अंगिरसोऽपि वराहा उच्यते।[6] तेजस्वी महापुरुष उत्तम उत्तम गुणों को ग्रहण करने के कारण वराह कहलाते हैं वरं वरं बृहति मूलानि। उत्तम उत्तम जड़ों या औषधियों को खोदकर खाने के कारण शूकर वराह कहलाता है। यास्क ने प्रवृफति प्रत्यय विभाग स्पष्ट दृष्ट न होने वाले परोक्ष शब्दों के अर्थ करते समय व्याकरण सिद्धपरम्परित अर्थ के स्थान पर लोक प्रचलित अर्थ ग्रहण करने के सिद्धान्त को प्रबल मान्यता दी है।

यास्क मन्त्रों के अर्थ के प्रतिपादन में उत्तम हैं, उनके अनुसार शब्दों की व्युत्पत्ति का निमित्त तो व्याकरण है, किन्तु उनकी प्रवृत्ति का निमित्त लोक व्यवहार होता है। शब्दों के व्यवहार का नियमन लोक से होता है। कौन सा शब्द किस अर्थ में प्रयुक्त होता है इसकी व्यवस्था में लोक व्यवहार ही प्रधान होता है। व्याकरण तो बाद में अनुगामी बनकर उन शब्दों के संस्कार में सहायक होता है। निर्वचन सिद्धान्त को सरल शब्दों में रेखांकित करते हुए आचार्य यास्क कहते हैं कि – तद्येषु पदेषु स्वरसंस्कारौ समर्थौ प्रादेशिकेन गुणेनान्वितौ स्यातां तथा तानि निर्ब्रूयात्।[7]अथानन्वितेऽर्थेऽप्रादेशिके विकारेऽर्थनित्यः परीक्षेत् केनचिद् वृत्तिसामान्येन। अविद्यमाने सामान्येऽप्यक्षरवर्णसामान्यान्निर्ब्रूयात्।[8] नत्वेव न निर्ब्रूयात्। न संस्कारमाद्रियेत्। विशयवत्यो हि वृत्तयो भवन्ति। यथार्थं विभक्ती सन्नमयेत्।[9] आचार्य दुर्ग ने यास्क के इन सिद्धान्तों का मन्तव्य स्पष्ट करते हुए कहा है कि उच्यते विशयः संशयस्तद् वत्य इति। केचिदर्थ सामान्येन क्वचिद्वर्तन्ते शब्दाः केचिद् स्वरसामान्येन केनचिद्वर्णसामान्येन यत एवं अतो विभक्तीरपि यथार्थमेव सन्नमयेत् विपरिणमयेत् किं कारणं तासामपि हि व्यत्ययो भवत्येव।[10] आचार्य यास्क एक एक पद के निर्वचन के समर्थक हैं वे कहते हैं कि प्रत्तमवत्तमिति धत्वादी एव शिष्येते।[11] अथाप्यस्तेनिवृत्ति स्थानेष्वादिलोपो भवति स्तः सन्तीति।[12] अथाप्यन्तलोपो गत्वा गतमीति। अथाप्युपध लोपो भवति। जग्मतुर्जग्मुरिति अथाप्युपध विकारो भवति राजा दण्डीति।[13] अथापि वर्णलोपो भवति तत्वायामीति। अथापि द्विवर्णलोपस्तृच इति। अथाप्यादि विपर्ययो भवति ज्योतिर्घनो बिन्दुबाट्य इति।[14] अथाप्याद्यन्त विपर्ययो भवति स्तोका रज्जुः सिकतास्तर्क्विति।[15] अथाप्यन्त व्यापत्तिर्भवति ओघो मेघो नाद्यो वर्ध्रर्ध्विति।[16] अथापि वर्णोपजनः। आस्ध्त् द्वारो भरुजेति। तद् यत्रा स्वरादनन्तरान्तस्थान्तर्धतु भवति तद् द्विप्रकृतीनां स्थानमिति प्रदिशन्ति। तत्रासिद्धायामनुपपद्यमानायामितरयोपपिपादयिषेत्।[17] तत्राप्येकेऽल्पनिष्पत्तयो भवन्ति यथैतद् उफतिः मृदुः पृथुः पृषतः कुणारुमिति। अथापि भाषिकेभ्यो धतुभ्यो नैगमाः कृतो भाष्यन्ते दमूनाः क्षेत्रासाध इति।[18] अथापि नैगमेभ्यो भाषिकाः उष्णम् घृतमिति।[19] अथापि प्रवृफतय एवैकेषु भाष्यन्ते विकृतय एकेषु। शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाष्यन्ते।[20] कम्बोजाः कम्बलभोजाः कमनीय भोजा वा। कम्बलः कमनीयो भवति। विकारमस्यार्थेषु भाषन्ते शव इति। दातिर्लवनार्थे प्राच्येषु दात्रामुदीच्येषु। एवमेकपदानि निर्ब्रूयात्।[21] अथ तद्धित समासेष्वेकपर्वसु चानेकपर्वसु च पूर्वं पूर्वमपरमपरं प्रविभज्य निर्ब्रूयात्। एवं तद्धितसमासान्निर्ब्रूयात्।[22] नावैयाकरणाय नानुपसन्नाय अनिदंविदे वा। नित्यं ह्यविज्ञातुर्विज्ञानेऽसूया। उपसन्नाय तु निर्ब्रूयाद्यो वाऽलं विज्ञातुं स्यान्मेधाविने तपस्विने वा।[23]

यास्क के इन निर्वचन सिद्धान्तों के अनुपालन पर दृष्टि आवश्यक है। यास्क के ये सिद्धान्त मन्त्रों के सर्वविध अर्थों का सम्पूर्ण व्याख्यान करने मे समर्थ दिखते हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि जो शैली यास्क ने विकसित की थी उसका अनुसरण उत्तरकालीन भाष्यकारों ने नहीं किया। जैसा कि द्रष्टव्य है– ऋग्वेद का आदिममन्त्र अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवं ऋत्विजम्। होतारं रत्नधातम्।[24] इसमें आदिम पद अग्नि है। अग्नि शब्द के निर्वचन में कहते हैं कि अग्रणीर्भवति। अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते। अंगं नयति संनममानः। अक्नोपनो भवति स्थौलाष्ठीविः।[25] न क्नोपयति न स्नेहयति।[26] इसी अग्नि पद की व्याख्या में सायण कहते हैं कि अंगति स्वर्गं गच्छति हविर्नेतुमित्यग्निः।[27] शेष पूर्ववर्ती आचार्यों की व्युत्पत्ति और ब्राह्मणग्रन्थों में वर्णित अग्नि शब्द के निर्वचनों का भरपूर उद्धरण देते हैं। किन्तु अपने सम्पूर्ण भाष्य में यास्क की निर्वचन शैली का उपयोग नहीं करते हैं जिसकी वजह से वेद के अनेक मन्त्रों के अनेक शब्द अपने वास्तविक अर्थ को अभिव्यक्त नहीं कर पाते हैं। सायण के पूर्ववर्ती भी और उत्तरवर्ती भी यास्क की शैली का अनुसरण करते नहीं दिखते जिसकी वजह से मन्त्रार्थ आज भी दुरुह है। यास्क की शैली का अनुसरण मन्त्रों के तात्पर्यार्थ में सर्वाधिक सहायक हो सकते हैं इस दृष्टि पर विचार आवश्यक है।

सन्दर्भसूची

1. निरुक्त–1.6
2. (यजुः 1.12)
3. (श.प.ब्रा. 1.1.3.7)
4. निरुक्त–5.1.22
5. निरुक्त–दुर्गवृत्ति 5.1.22
6. निरुक्त–5.1.22
7. निरुक्त–2.1
8. निरुक्त–2.2
9. निरुक्त–2.3
10. निरुक्तदुर्गवृत्ति–2.3
11. निरुक्त–2.4
12. निरुक्त–2.5
13. निरुक्त–2.6
14. निरुक्त–2.8
15. निरुक्त–2.9
16. निरुक्त–2.10
17. निरुक्त–2.12
18. निरुक्त–2.15
19. निरुक्त–2.16
20. निरुक्त–2.18
21. निरुक्त–2.20
22. निरुक्त–2.22
23. निरुक्त–2.24
24. ऋग्वेद 1.1.1
25. निरुक्त–4.2
26. निरुक्त–4.3
27. ऋग्वेद सायणभाष्य 1.1.1.